ISSN 2454 - 5163

प्रकाशन तिथि : 26 सितम्बर 2015, मूल्य 2 रुपये, वर्ष 34, अंक 3, कुल पृष्ठ 36

वीतराग-विज्ञान

(पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट का मुखपत्र)

सम्पादक : डॉ. हुकमचंद भारिल्ल

हस्तलिखित मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ ताम्रपत्र विमोचन के अवसर पर (2 अक्टूबर 2015)

वीतराग-विज्ञान (387)

हिन्दी, मराठी व कन्नड़ भाषा में प्रकाशित

जैनसमाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक

सम्पादक :

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

सह-सम्पादक :

डॉ. संजीवकुमार गोधा

प्रकाशक एवं मुद्रक :

ब्र. यशपाल जैन द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि., जयपुर से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पर्क-सूत्र :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015

फोन :(0141)2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

ISSN 2454 - 5163

शुल्क :

आजीवन	:	251 रुपये
वार्षिक	:	25 रुपये
एक प्रति	:	2 रुपये

मुद्रण संख्या :

हिन्दी	:	7200
मराठी	:	2000
कन्नड़	:	1000
कुल	:	10200

आत्मकल्याण का पुरुषार्थ

प्रथम तो विचार में निरावलम्बीरूप से चलना चाहिये। किसी के आधार बिना ही अद्धर से चले कि मैं ऐसा हूँ...उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप हूँ...आदि। उन विचारों के चलते...चलते अंतर में ऐसा रस उत्पन्न होता है कि बाह्य में आना अच्छा नहीं लगता। अभी है तो विकल्प, परन्तु ऐसा लगता है यह मैं...यह मैं...ऐसा मंथन चलते-चलते वे विकल्प भी छूट जाते हैं, फिर तो सहज हो जाता है...स्वाध्याय के समय भी वह का वही लक्ष्य चला करता है, यह द्रव्य, यह गुण, यह पर्याय...यह विचार चलने से सारे जगत के अन्य विकल्प छूट गये होते हैं। शास्त्रों के शब्द बिना हृदय से ही हल हो जाना चाहिये। मूल में से उठाव आना चाहिये। दूसरा कुछ कम समझ में आता हो उसकी कोई बात नहीं...अन्य सर्व विकल्प छूट जाते हैं और ऊपर से एक आत्मा सम्बन्धी विचार चलते ही रहते हैं। सम्पूर्ण सत्ता का ज्ञान में मंथन चलता है। प्रयोग तो उसी को करना पड़ता है...विश्वास आना चाहिये...दूसरी दूसरी चिन्ताएँ हों तो यह कहाँ से चलेगा ? इसका अभ्यास बारम्बार होना चाहिये। 291

– द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर, पृष्ठ 67

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 34 (वीर नि. संवत् - 2541) 387 अंक : 3

भोंदू भाई ! समुझ सबद...

भोंदू भाई ! समुझ सबद यह मेरा।
जो तू देखै इन आंखिन सौं, तामैंकछू न तेरा।।टेक।।
ए आंखैं भ्रम ही सौं उपजी, भ्रम ही के रस पागी।
जहँ जहँ भ्रम तहँ तहँ इनको श्रम, तू इन ही कौ रागी।।1।।
ए आंखैं दोउ रची चाम की, चामहि चाम विलोवै।
ताकी ओट मोह निद्रा जुत, सुपन रूप तू जोवै।।2।।
इन आंखिन कौ कौन भरोसौ, एक विनसैं छिन माही।
है इनको पुदगल सौं परचै, तू तो पुदगल नाहीं।।3।।
पराधीन बल इन आंखिन कौ, विनु प्रकाश न सूझै।
सो परकाश अगनि रवि शशि को, तू अपनौं कर बूझे।।4।।
खुले पलक ए कछु इक देखहि, मुंदे पलक नहिं सोऊ।
कबहूँ जाहि होंहि फिर कबहूँ, भ्रामक आंखैं दोऊ।।5।।
जंगम काय पाय एक प्रगटै, नहिं थावर के साथी।
तू तो मान इन्हें अपने दृग, भयौ भीम को हाथी।।6।।
तेरे दृग मुद्रित घट-अन्तर, अन्ध रूप तू डोलै।
कै तो सहज खुलै वे आंखैं, कै गुरु संगति खोलै।।7।।

– कविवर पण्डित बनारसीदासजी

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे....)

दान का स्वरूप

अब अध्याय के अन्त में दान का स्वरूप एवं दातार आदि की अपेक्षा दान में समागत विशेषताओं को बताते हैं –

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम् ।।३८।।

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः ।।३९।।

उपकार के लिए धन वगैरह अपनी वस्तु का त्याग करना, दान है।

विधि, द्रव्य, दातार और पात्र की विशेषता से दान में विशेषता आती है।

स्व और पर – दोनों के उपकार के लिए स्वयं के धन आदि **उपयोगी सामग्री का त्याग करना, दान है।**

यहाँ दान की चर्चा अतिथिसंविभाग व्रत के संदर्भ में है।

अत: ज्ञानी गृहस्थों द्वारा अपने और पराये उपकार के लिए योग्य पात्र महाव्रती-अणुव्रतियों को दिये गये शुद्ध अहिंसक आहार आदि वस्तुयें देने की चर्चा विशेष होगी।

लोभ की कमी और पुण्य का बंध, अपना उपकार है और जिन्हें दान दिया जाता है; उन्हें सम्यग्ज्ञानादि की वृद्धि, पर का उपकार है।

'स्व' का अर्थ अपना भी होता है और धन भी होता है। इसप्रकार यहाँ 'स्व' का अर्थ हुआ अपने स्वामित्व की उपयोगी धनादि वस्तु।

अत: अपने और पर के उपकार के लिए स्वयं के धनादि उपयोगी पदार्थ देना, **'दान'** है।

वैसे दान चार प्रकार का होता है – १. आहारदान, २. औषधिदान, ३. ज्ञानदान और ४. अभयदान।

यथायोग्य सम्मान के साथ विधिपूर्वक उपयोगी वस्तु उदारचित्त दातार के द्वारा योग्य पात्र को दिये जाने से दान में विशेषता आ जाती है।

यदि उत्तम पात्र वीतरागी सन्तों को, नवधाभक्ति पूर्वक, अत्यन्त प्रमोद भाव से, शुद्ध-सात्त्विक आहार को सप्तगुण सम्पन्न दातार देता है तो उक्त दातार को सातिशय

पुण्य का बंध होता है और मुनिराज को ज्ञान और संयम की साधना में अनुकूलता प्राप्त होती है।

इसप्रकार स्व अर्थात् स्वयं को और पर अर्थात् छठवें गुणस्थानवर्ती मुनिराज को – दोनों को लाभ होता है।

अब आहारदान के संदर्भ में विधिविशेष, द्रव्यविशेष, दातारविशेष और पात्रविशेष की चर्चा करते हैं।

(क) विधिविशेष – नवधाभक्ति के क्रम को विधिविशेष कहते हैं।

१. पड़गाहन, २. उच्चासन देना, ३. चरण धोना, ४. पूजन करना, ५. नमस्कार करना, ६. मनशुद्धि, ७. वचनशुद्धि, ८. कायशुद्धि और ९. भोजनशुद्धि का उच्चारण करना – ये **नवधाभक्ति** है।

तात्पर्य यह है कि लगभग प्रात: १० से ११ बजे जब मुनिराज आहार लेने पधारें, तब अपने घर के सामने के रास्ते में उन्हें विनयपूर्वक बुलाना, **पड़गाहन** है। उनके आ जाने पर उन्हें उच्चासन पर बिठाना, प्रासुक जल से चरण धोना, पूजन करना, नमस्कार करना – इसके बाद मनशुद्धि, वचनशुद्धि और कायशुद्धि बोलना और अन्त में यह बताना की आहार-जल शुद्ध है – ये नवधाभक्ति है।

मुनिराजों को आहार देने की यह विधिविशेष है।

(ख) द्रव्यविशेष – जो खाद्य सामग्री एकदम अहिंसक, शुद्ध, सात्त्विक और आत्मसाधना और स्वाध्याय की साधक हो, अभक्ष्य न हो; वह द्रव्यविशेष है।

(ग) दातारविशेष – जो दातार – १. सांसारिकलाभ की आकांक्षा से रहित हो, २. शान्त परिणामी हो, ३. प्रसन्नचित्त, ४. सरल हृदय, ५. ईर्ष्याभाव से रहित, ६. खेद से रहित और ७. अभिमान से रहित हो; वह व्यक्ति दातारविशेष होता है।

(घ) पात्रविशेष – निर्ग्रन्थ मुनिराज उत्तम पात्र, व्रती सम्यग्दृष्टि मध्यम पात्र और अविरत सम्यग्दृष्टि जघन्यपात्र होते हैं।।३८-३९।।

इसप्रकार यहाँ सातवाँ अध्याय समाप्त होता है।

आठवाँ अध्याय

पृष्ठभूमि

प्रथम अध्याय में मुक्तिमार्ग का सामान्य विवेचन करने के उपरान्त आगामी तीन अध्यायों में **जीव तत्त्वार्थ** की चर्चा हुई।

पाँचवें अध्याय में **अजीव तत्त्वार्थ** का निरूपण किया गया।

उसके बाद छठवें और सातवें अध्याय में **आस्रव तत्त्वार्थ** का विवेचन किया गया।

छठवें अध्याय में आस्रव की चर्चा सामान्यरूप से हुई और फिर सातवें अध्याय

में शुभास्रव अर्थात् **पुण्यास्रव** की चर्चा की गई।

जीव तत्त्वार्थ हम सब स्वयं हैं; अत: अत्यन्त प्रयोजनभूत होने से जीव तत्त्वार्थ का विवेचन अपेक्षित विस्तार के साथ तीन अध्यायों में किया गया; **पर सामान्य ज्ञेयरूप होने से अजीव तत्त्वार्थ को एक अध्याय में ही निबटा दिया।**

इसप्रकार आरंभ के पाँच अध्यायों में सामान्य मोक्षमार्ग और द्रव्य तत्त्वार्थों की चर्चा हुई।

इसके बाद **पर्याय तत्त्वार्थों** में सबसे पहले आस्रव तत्त्वार्थ की चर्चा की गई; जो दो अध्यायों में समाप्त हुई।

प्रश्न – आस्रव तत्त्वार्थ तो हेय है, छोड़नेयोग्य है; उसके विवेचन के लिए दो अध्याय क्यों दिये गये ?

उत्तर – आस्रव तत्त्व को मूलत: तो एक छठवें अध्याय में ही निबटा दिया था; पर **अनादि अज्ञान के कारण हेयरूप पुण्यास्रव तत्त्वार्थ को उपादेय मान लिया जाता है। उक्त अज्ञान के निवारण के लिए सातवें अध्याय की विशेषरूप से रचना की गई है।**

इसकारण यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो गई कि मोक्षमार्ग में पुण्यास्रव भी पापास्रव के समान हेय ही है।

सात तत्त्वार्थों में आस्रव के बाद बंध तत्त्वार्थ आता है। अत: अब उसका विवेचन प्रसंग प्राप्त है।

बंध के कारणरूप भाव

इस अध्याय में सबसे पहले कर्मबंध के कारणों की मीमांसा करते हैं–

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतव: ।।१।।

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग – ये कर्मबंध के कारण हैं।

१. मिथ्यादर्शन – अतत्त्व के श्रद्धान या तत्त्वार्थों के अश्रद्धान को मिथ्यादर्शन कहते हैं। उक्त मिथ्यादर्शन गृहीत और अगृहीत के भेद से दो प्रकार का होता है।

मिथ्यात्व कर्म के उदय से होनेवाले देहादि परपदार्थों में एकत्व बुद्धिरूप अनादिकालीन मिथ्यात्व को **अगृहीत मिथ्यात्व** कहते हैं।

यह मिथ्यात्व एकेन्द्रियादि जीवों में भी पाया जाता है।

जो मिथ्यात्व बुद्धिपूर्वक ग्रहण किया जाता है, जिसमें परोपदेश निमित्त होता है; सैनी पंचेन्द्रिय जीवों को होनेवाला वह मिथ्यात्व **गृहीत मिथ्यात्व** कहा जाता है।

बंध के कारणों में सर्वाधिक खतरनाक कारण मिथ्यात्व ही है। इसीलिए इसका अभाव सबसे पहले किया जाता है; क्योंकि इसके अभाव के बिना शेष आस्रव भावों

का अभाव होना संभव ही नहीं है।

इसके अभाव बिना धर्म का आरंभ नहीं होता। जीव पहले गुणस्थान से भी नहीं निकलता। इसी कारण यह जीव अनादिकाल से चार गति और चौरासी लाख योनियों में भटक रहा है, अनन्त दु:ख भोग रहा है।

खेद है कि कुछ लोग इस मिथ्यात्व को बंध का कारण ही नहीं मानते। यदि इसे बंध का कारण नहीं माना जायेगा तो फिर इसका अभाव भी कोई क्यों करेगा ?

२. अविरति – व्रतों का नहीं होना ही **अविरति** है। व्रतों की चर्चा अणुव्रत-महाव्रत; गुणव्रत और शिक्षाव्रतों के रूप में हो चुकी है।

३. प्रमाद – इसीप्रकार प्रमाद की चर्चा भी पाँच पापों की परिभाषा में **प्रमत्तयोगात्** पद की वजह से पर्याप्त विस्तार के साथ हो चुकी है।

४. कषाय – कषाय तो सर्वत्र ही बहुचर्चित विषय रहा है।

५. योग – इसीप्रकार योगों की चर्चा छठवें अध्याय के आरंभ में विस्तार से आ गई है।

इसप्रकार बन्ध के हेतु के रूप में मिथ्यादर्शन वर्तमानकाल का बहुचर्चित विषय है।

१. पहले गुणस्थानवालों के बंध करनेवाले उक्त **पाँचों कारण** विद्यमान हैं।

२. दूसरे, तीसरे और चौथे गुणस्थानवाले के एक मिथ्यात्व को छोड़कर शेष **चारों कारण** विद्यमान हैं।

३. पाँचवें गुणस्थानवाले संयतासंयत के भी सकलविरति के अभावरूप अविरति तथा प्रमाद, कषाय और योग – ये बंध के **चार कारण** विद्यमान हैं।

४. छठवें गुणस्थानवाले प्रमत्तसंयत के प्रमाद, कषाय और योग – ये बंध के **तीन कारण** विद्यमान हैं।

५. सातवें से दशवें गुणस्थानवालों के कषाय और योग – ये **दो कारण** विद्यमान हैं।

६. ग्यारह, बारह और तेरहवें गुणस्थानवालों के **एकमात्र योग** ही बंध के कारण के रूप में विद्यमान रहता है।

७. चौदहवें गुणस्थान में बंध का एक भी कारण विद्यमान नहीं है; अत: वहाँ बंध होता ही नहीं है। सिद्धदशा तो अबन्धदशा ही है।

उक्त कथन से भी सहज सिद्ध है कि मिथ्यात्व ही मुख्यरूप से सबसे अधिक खतरनाक कर्मबंध का कारण है; क्योंकि **जिनके मिथ्यात्व विद्यमान है; उनके तो कर्मबंध के सभी कारण विद्यमान ही हैं।**

मिथ्यात्व का अभाव किये बिना बंध के किसी भी कारण का अभाव संभव नहीं है ।।१।।

बंध का स्वरूप

कर्मबंध के कारण बताने के उपरान्त अब कर्मबंध का स्वरूप स्पष्ट करते हैं; जो इसप्रकार है –

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ।।२।।

कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है; वह बंध है।

प्रश्न – गत सूत्र में बंध के कारण पाँच बताये हैं और यहाँ बंध के स्वरूप में एकमात्र कषाय का उल्लेख किया है – इसका कारण क्या है?

उत्तर – यहाँ कषाय का अर्थ मात्र कषाय नहीं है; अपितु मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषाय है। इसके अतिरिक्त प्रकृति और प्रदेश बंध में योग भी कारण है।

इसी सूत्र की टीका में राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि – दोनों ही टीका ग्रन्थों में कहा गया है कि –

"तात्पर्य यह है कि मिथ्यादर्शन आदि के आवेश से आर्द्र आत्मा में चारों ओर से योगविशेष से सूक्ष्म अनन्तप्रदेशी एकक्षेत्रावगाही कर्मयोग्य पुद्गलों का अविभागात्मक बन्ध हो जाता है।

जैसे किसी बर्तन में अनेक प्रकार के रसवाले बीज, फल, फूल आदि का मदिरारूप से परिणमन होता है; उसीतरह आत्मा में ही स्थित पुद्गलों का योग और कषाय से कर्मरूप परिणमन हो जाता है।

यद्यपि मिथ्यादर्शन आदि बंध के कारण हैं, फिर भी पूर्वोपात्त कर्म के वे परिणाम हैं; अत: **कार्यरूप से आत्मा को परतंत्र करने के कारण बंध कहे जाते हैं।**[१]"

कषाय पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक सर्वत्र पाई जाती है; पर **मिथ्यात्व** चौथे में समाप्त हो जाता है; **अविरति** छठवें में और **प्रमाद** सातवें गुणस्थान में समाप्त हो जाता है। इसलिए **कषाय सहित होने से** – ऐसा कहा गया है।

यदि **मिथ्यात्व सहित होने से** कहते तो फिर व्रतियों के कर्मपुद्गलों का ग्रहण संभव नहीं रहता तथा **प्रमाद सहित होने से** कहते तो फिर अप्रमत्तादि गुणस्थान में कर्मपुद्गलों का ग्रहण संभव नहीं होता।

यदि योग सहित होने से कहते तो फिर योग से तो मात्र प्रकृति-प्रदेश बंध ही

१. अकलंकदेव : तत्त्वार्थराजवार्तिक, पृष्ठ ७४६-७४७

होता है, स्थिति-अनुभागबंध नहीं, अत: वह अबन्ध के समान ही है।

अत: **कषाय सहित होने से** इस पद का प्रयोग बहुत सोच-समझ कर किया गया प्रयोग है ।।२।।

बंध के प्रकार

कर्मबंध के कारण और स्वरूप बताने के उपरान्त अब बंध के प्रकारों की चर्चा करते हैं; जो इसप्रकार है –

प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ।।३।।

वह बंध – प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार प्रकार का है।

प्रकृति **स्वभाव** को कहते हैं; स्थिति **काल की मर्यादा** को कहते हैं; अनुभाग **रस के परिपाक** को कहते हैं और प्रदेश **कर्म परमाणुओं के समूह** को कहते हैं।

यह तो पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि योग से प्रकृति और प्रदेश बंध होते हैं और कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध होते हैं।

वस्तुत: होता यह है कि मन, वचन और काय के योग से आत्म प्रदेशों में परिस्पंद (कंपन) होता है। उक्त आत्मप्रदेशों के कंपन के निमित्त से इस लोक में ठसाठस भरी हुई पौद्गलिक कार्मण वर्गणायें कर्मरूप परिणमित होती हैं। उन कर्मरूप परिणमित कार्मण वर्गणाओं के एकसमयप्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणु आत्मप्रदेशों के साथ एक क्षेत्रावगाहरूप से सम्बद्ध होते हैं और लगभग इतने ही खिर जाते हैं।

कर्मरूप परिणमित उक्त परमाणुओं का आत्मप्रदेशों के साथ एकमेक होना ही **प्रदेशबंध** है।

उक्त परमाणुओं का ज्ञानावरणादि कर्मों के रूप में बंटवारा होने को **प्रकृतिबंध** कहते हैं।

कषाय के निमित्त से उनमें काल की मर्यादा सुनिश्चित होती है कि कौन से कर्म कब तक आत्मप्रदेशों में आबद्ध रहेंगे। वे कब/कैसे-कैसे उदय में आवेंगे। यह **काल की मर्यादा स्थितिबंध** कहलाती है।

साथ ही कषाय के ही निमित्त से यह सुनिश्चित होता है कि ये कर्म कैसे/क्या फल देंगे ? तात्पर्य यह है कि उसके निमित्त से इस जीव को क्या/कैसा फल भुगतना होगा – यह **अनुभाग बंध** है।

इसप्रकार प्रकृतिबंध, प्रदेशबंध, स्थितिबंध और अनुभागबंध के भेद से बंध चार प्रकार का होता है।

ये चारों ही बंध प्रत्येक कषाय संयुक्त रागी जीव के प्रतिसमय होते रहते हैं।

इसप्रकार संसारावस्था में पहले से दशवें गुणस्थान तक चारों बंध नियम से एक साथ होते ही रहते हैं और ग्यारहवें गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक प्रकृति और प्रदेश बंध होते हैं, चौदहवें गुणस्थान और सिद्ध दशा में कोई बंध नहीं होता ।।३।।

प्रकृतिबंध के भेद-प्रभेद

अब सर्वप्रथम बंध के प्रकारों के अंतर्गत प्रकृतिबंध के भेद-प्रभेदों की चर्चा करते हैं; जो इसप्रकार है –

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ।।४।।

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम् ।।५।।

प्रकृतिबंध के ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय – ये आठ भेद हैं।

इन आठों कर्मों के क्रमशः पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पाँच भेद होते हैं।

१. ज्ञानावरण – आत्मा के ज्ञान गुण को आवरित करने (ढ़कने) में अथवा घात करने में जो कर्म निमित्त हो, उसे **ज्ञानावरण कर्म** कहते हैं।

२. दर्शनावरण – आत्मा के दर्शन गुण को आवरित करने (ढ़कने) में अथवा घात करने में जो कर्म निमित्त हो, उसे **दर्शनावरण कर्म** कहते हैं।

३. वेदनीय – लौकिक अनुकूलता-प्रतिकूलतारूप संयोग प्राप्त होने में जिस कर्म का उदय निमित्त हो; उस कर्म को **वेदनीय कर्म** कहते हैं।

अनुकूल संयोग में साता वेदनीय और प्रतिकूल संयोग में असाता वेदनीय का उदय निमित्त होता है।

४. मोहनीय – जिस कर्म के उदय के निमित्त से स्वयं को भूलकर देहादि परपदार्थों में एकत्व-ममत्व करे, पर का कर्त्ता-भोक्ता बने अथवा कषायभाव उत्पन्न हो; उसे **मोहनीय कर्म** कहते हैं।

वह दो प्रकार का होता है – १. दर्शनमोहनीय और २. चारित्र मोहनीय।

दर्शनमोहनीय कर्म के उदय के निमित्त से जीव स्वयं को भूलकर परपदार्थों में **एकत्व-ममत्व करता है; पर का कर्त्ता-भोक्ता बनता है** और चारित्र मोहनीय के उदय के निमित्त से **क्रोधादि कषायभावरूप परिणमता** है।

५. आयु – जिस कर्म के उदय के निमित्त से यह जीव मनुष्य, देव, नारकी और पशु पर्याय में रुकता है; उसे आयुकर्म कहते हैं।

६. नाम – जिस कर्म के उदय के निमित्त से शरीरादि की रचना होती है; उस कर्म को नामकर्म कहते हैं।

७. गोत्र – जिस कर्म के उदय के निमित्त से यह जीव, नीच-उच्च कुल में पैदा होता है; उस कर्म को गोत्रकर्म कहते हैं।

नीचगोत्र कर्म के उदय के निमित्त से नीच कुल में और उच्चगोत्र कर्म के उदय के निमित्त से उच्चकुल में जन्म होता है।

८. अन्तराय – जिस कर्म के उदय के निमित्त से दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में रुकावट पैदा हो; उसे अन्तराय कर्म कहते हैं।

इन आठ भेदों में ज्ञानावरण के पाँच, दर्शनावरण के नौ, वेदनीय के दो, मोहनीय के अट्ठाईस, आयु के चार, नाम के ब्यालीस[१], गोत्र के दो और अन्तराय के पाँच भेद होते हैं।

इसप्रकार कर्म, मूलतः आठ प्रकार का है और उसकी उत्तर प्रकृतियाँ अभेद विवक्षा से सत्तानवें और भेद विवक्षा से एक सौ अड़तालीस हैं।

प्रश्न – भेद विवक्षा और अभेद विवक्षा से क्या आशय है ?

उत्तर – गति को एक गिनो तो अभेद विवक्षा और चार गिनो तो भेद विवक्षा।

इसीप्रकार जाति को एक मानो तो अभेद विवक्षा और पाँच मानो तो भेद विवक्षा।

इसीप्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए।।४-५।।

ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के प्रकार

आठ कर्मों की चर्चा के उपरान्त अब ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्मों के भेदों की चर्चा करते हैं –

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम् ।।६।।

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां निद्रानिदानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ।।७।।

मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण – ये पाँच भेद ज्ञानावरण के हैं।

चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल दर्शनावरण, निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला, स्त्यानगृद्धि – ये नौ भेद दर्शनावरण कर्म के हैं।

मतिज्ञान आदि ज्ञानों की चर्चा प्रथम अध्याय में हो चुकी है। उक्त मतिज्ञान आदि ज्ञानों को आवरित करने (ढ़कने) में जो निमित्त हों, उन्हें क्रमशः मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण कर्म कहते हैं।

इसप्रकार यह पाँच प्रकार के ज्ञानावरण कर्म का विवरण है।

इसीप्रकार चक्षुदर्शन आदि चार दर्शनों की चर्चा भी उपयोग के प्रकरण में दूसरे अध्याय में हो चुकी है।

उक्त चक्षुदर्शन आदि चार दर्शनों को आवरित करने में निमित्त पड़नेवाले कर्मों को क्रमशः चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और केवलदर्शनावरण कर्म कहते हैं।

५. **निद्रा** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से थकान दूर करने के लिए सोना आवश्यक हो जाता है; वह निद्रादर्शनावरणी कर्म है।

६. **निद्रा-निद्रा** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से ऐसी गहरी नींद आवे कि जिसमें आँखें खोलना भी अशक्य हो जाय; वह निद्रा-निद्रादर्शनावरणी कर्म है।

७. **प्रचला** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से श्रम और थकान के कारण बैठे-बैठे ही नींद आने लगे; वह प्रचला नामक दर्शनावरणी कर्म है।

८. **प्रचला-प्रचला** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से प्रचला की अधिकता हो जाय; उसे प्रचला-प्रचलादर्शनावरणीकर्म कहते हैं।

९. **स्त्यानगृद्धि** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से जीव सोते-सोते ही उठकर शक्ति के बाहर कोई बड़ा काम कर डाले; उसे स्त्यानगृद्धि नामक दर्शनावरणी कर्म कहते हैं।

यहाँ एक **प्रश्न** सहज ही संभव है कि दर्शन तो चार ही हैं; अत: दर्शनावरणी कर्म भी चार प्रकार का होना चाहिए।

उत्तर इसप्रकार है कि यद्यपि निद्रादिक सामान्य आवरण कर्म हैं; तथापि संसारी जीव के पहले दर्शनोपयोग (सामान्य प्रतिभास) होता है और ये निद्रादिक उस उपयोग में बाधक हैं। इसलिए इन निद्रा आदि पाँच कर्मों की दर्शनावरण के भेदों में परिगणना की जाती है। इससे दर्शनावण कर्म के नौ भेद सिद्ध होते हैं।

इसप्रकार यह नौ प्रकार के दर्शनावरण कर्म का विवरण है।।६-७।।

वेदनीय, मोहनीय और आयु कर्म के प्रकार

ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म के प्रकारों के विवरण के उपरांत अब वेदनीय, मोहनीय और आयु कर्म की चर्चा करते हैं; जो इसप्रकार हैं –

सदसद्वेद्ये ।।८।।

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सा-स्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानु बन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलन विकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः ।।९।।

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि ।।१०।।

वेदनीय कर्म के दो प्रकार हैं – १. सातावेदनीय और २. असाता वेदनीय।

मोहनीय कर्म भी दो प्रकार का है –

१. दर्शनमोहनीय और २. चारित्रमोहनीय।

दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं –

१. सम्यक्त्व दर्शनमोहनीय (सम्यक्त्व प्रकृति दर्शनमोहनीय), २. मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय और ३. सम्यक्मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय।

चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं –

१. अकषायवेदनीय और २. कषायवेदनीय।

अकषायवेदनीय के नौ भेद हैं – हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद।

कषायवेदनीय के सोलह भेद हैं – अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ।

नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु – ये चार आयुकर्म की उत्तर प्रकृतियाँ हैं।

इसप्रकार दर्शनमोहनीय के तीन और चारित्रमोहनीय के पच्चीस भेद हैं। इसतरह कुल मिलाकर मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियाँ हैं।

१. जिस कर्म के उदय के निमित्त से अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक अनुकूलताओं (सुखों) का अनुभव होता है; वह **सातावेदनीय** नामक कर्म है।

२. जिस कर्म के उदय के निमित्त से अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक प्रतिकूलताओं (दु:खों) का अनुभव होता है; वह **असाता वेदनीय** नामक कर्म है।

इसप्रकार वेदनीय कर्म साता और असाता के भेद से दो प्रकार का है।

मोहनीय कर्म में दर्शनमोहनीय बंधता तो मात्र एक **मिथ्यात्व** के रूप में ही है; परन्तु जब यह जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करता है; तब सत्ता में विद्यमान इस मिथ्यात्व नामक कर्म के तीन टुकड़े हो जाते हैं; जिनके नाम हैं – (१) सम्यक्त्व प्रकृति, (२) मिथ्यात्व और (३) मिश्र।

इसप्रकार सत्ता और उदय में दर्शनमोहनीय तीन प्रकार का हो जाता है।

(१) सम्यक्त्व प्रकृति के उदय के निमित्त से सम्यक्त्व का घात तो नहीं होता; परन्तु सम्यक्त्व में चल, मल, अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं। इसप्रकार के सम्यग्दर्शन को **क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन** कहते हैं। यह भी चौथे से सातवें गुणस्थान में ही

रहता है।

(२) मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय कर्म के उदय के निमित्त से अनन्त संसार का कारण **मिथ्यात्व** होता है। यह पहले गुणस्थान में होता है।

(३) मिश्र प्रकृति के उदय से तीसरा गुणस्थान होता है। इसमें सम्यग्दर्शन और मिथ्यादर्शन का मिश्रित भाव होता है।

अकषाय वेदनीय नामक मोहनीय कर्म अकषायरूप नहीं, ईषद् कषायरूप है, किंचित् कषायरूप है; इसलिए इसे **नोकषाय** भी कहते हैं।

यहाँ अकषाय शब्द में 'अ' नञ तत्पुरुष समास के रूप में आया है; जिसका भी भाव, अभावरूप न होकर ईषद् (अल्प) भावरूप होता है।

हास्यादिक नोकषायें, क्रोधादिक कषायों के समान घातक नहीं हैं। इसलिए उन्हें अकषाय या नोकषाय कहते हैं।

हास्यादि नोकषायों का संक्षिप्त स्वरूप इसप्रकार है –

१. जिसके उदय के निमित्त से हंसी आती है, उस कर्म को **हास्य** नोकषाय कहते हैं।

२. जिसके उदय के निमित्त से किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति सहज स्नेह जागृत होता है; उस कर्म को **रति** नामक नोकषाय कहते हैं।

३. जिसके उदय के निमित्त से किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति सहज उपेक्षाभाव जागृत होता है; उस कर्म को **अरति** नामक नोकषाय कहते हैं।

४. जिसके उदय के निमित्त से रंज होता है; उस कर्म को **शोक** नामक नोकषाय कहते हैं।

५. जिसके उदय के निमित्त से डर लगता है; उस कर्म को **भय** नामक नोकषाय कहते हैं।

६. जिसके उदय के निमित्त से ग्लानिरूप भाव जागृत होता है; उस कर्म को **जुगुप्सा** नामक नोकषाय कहते हैं।

७. जिसके उदय के निमित्त से पुरुष से रमण करने के भाव होते हैं; उस कर्म को **स्त्रीवेद** नामक नोकषाय कहते हैं।

८. जिसके उदय के निमित्त से स्त्री से रमण करने के भाव उत्पन्न होते हैं; उस कर्म को **पुरुषवेद** नामक नोकषाय कहते हैं।

९. जिसके उदय के निमित्त से स्त्री और पुरुष दोनों से रमण करने के भाव उत्पन्न होते हैं; उस कर्म को **नपुंसकवेद** नामक नोकषाय कहते हैं।

इसप्रकार ये नौ प्रकार, नोकषाय नामक चारित्रमोहनीय कर्म के हैं।

अब कषायवेदनीय नामक चारित्रमोहनीय कर्म की बात करते हैं–

कषायें चार हैं – क्रोध, मान, माया और लोभ।

ये चारों कषायें चार-चार प्रकार की होती हैं –

१. अनंतानुबंधी कषाय   २. अप्रत्याख्यानावरण कषाय

३. प्रत्याख्यानावरण कषाय   ४. संज्वलन कषाय

इसप्रकार कषायें सोलह प्रकार की हो जाती हैं।

यह तो आप जानते ही हैं कि **क्रोध, गुस्से को कहते हैं; मान, अभिमान को कहते हैं; माया, छल-कपट करने को कहते हैं** और **लोभ, लालच-तृष्णा को कहते हैं।**

१. अनंत संसार का कारण होने से **मिथ्यात्व को अनंत कहते हैं** अत: मिथ्यात्व के साथ होनेवाले क्रोध, मान, माया और लोभ को अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ कहते हैं।

इस अनंतानुबंधी कषाय के कारण, स्वरूप में आचरण नहीं हो सकता, स्वरूपाचरणचारित्र नहीं होता। चारित्रमोहनीय कर्म की प्रकृति होने के कारण यह स्वरूपाचरणचारित्र की घातक है, स्वरूपाचरणचारित्र नहीं होने में निमित्त है। अत: हम कह सकते हैं कि **जिसके उदय के निमित्त से स्वरूप में आचरण न हो सके, स्वरूपाचरणचारित्र न हो सके, सम्यक्त्वाचरणचारित्र न हो सके; उस कर्म को अनंतानुबंधी कषाय** नामक कर्म कहते हैं।

२. जिसके उदय के निमित्त से देशविरति अर्थात् थोड़ा भी संयम न हो सके अर्थात् संयमासंयम भी न हो सके; उस कर्म को **अप्रत्याख्यानावरण कषाय कर्म** कहते हैं।

३. जिसके उदय के निमित्त से संपूर्ण विरति अर्थात् सकल संयम न हो सके; उस कर्म को **प्रत्याख्यानावरण कषाय कर्म** कहते हैं।

४. जो संयम के साथ जलती रहे अर्थात् जिसके रहने पर भी संयम रह सके, पर यथाख्यातचारित्र न हो सके; वह **संज्वलन कषाय** नामक कर्म है।

सभी कर्मों में यह **मोहनीय कर्म ही सर्वाधिक खतरनाक कर्म है; क्योंकि एकमात्र इसके उदय के निमित्त से होनेवाले मिथ्यात्व और कषाय-नोकषायरूप भाव आगामी कर्मबंध में निमित्त होते हैं।**

शेष सात कर्मों के उदय के निमित्त से होनेवाले संयोगरूप परद्रव्य और संयोगी भाव आगामी कर्मों के बंध में निमित्त भी नहीं हैं।

मोहनीय में भी मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायें ही अनंत संसार का

कारण हैं। यह बात गंभीरता से विचार करने योग्य है।

कर्मों की १४८ उत्तर प्रकृतियों में मिथ्यात्व नामक दर्शनमोहनीय प्रकृति के समक्ष १४७ प्रकृतियाँ मानो कुछ भी नहीं हैं; क्योंकि **एक मिथ्यात्व के नाश होने पर शेष प्रकृतियाँ भी नाश होने लगती हैं,** संसार सागर का किनारा नजदीक आ जाता है। इसके अभाव के बिना एक भी कर्म प्रकृति का सर्वथा नाश नहीं होता।

यही कारण है कि सिद्धचक्रविधान की प्रथम पूजन की जयमाला में लिखा है कि –

जय करण कृपाण सु प्रथम बार, मिथ्यात्व सुभट कीनों प्रहार।
दृढकोट विपर्यय मति उलंघि, पायो समकित थल थिर अभंग।।

हे भगवन् ! आपने करण (करणलब्धि) रूपी कृपाण (तलवार) से सर्वप्रथम मिथ्यात्व नामक सुभट (योद्धा) पर प्रहार किया। उसे मारकर फिर उल्टी बुद्धिरूपी मजबूत कोट का उल्लंघन कर आपने सम्यग्दर्शन रूप स्थिर और अभंग स्थल की प्राप्ति की अर्थात् प्रथमोपशम सम्यग्दर्शन की प्राप्ति की।

इसप्रकार धर्म का आरंभ मिथ्यात्व के नाश से होता है।

जिसप्रकार सम्यग्दर्शन मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी है; उसीप्रकार मिथ्यादर्शन अर्थात् मिथ्यात्व संसार का मूल है।

इसलिए प्रत्येक आत्मार्थी मुमुक्षु भाई-बहिन का **सर्वप्रथम कर्त्तव्य मिथ्यात्व के नाश का पुरुषार्थ करना है,** सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का पुरुषार्थ करना है।

यह सारा जगत तो वेदनीय कर्म के निमित्त से होनेवाले अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों के उलट-पुलट करने में उलझा रहता है। वेदनीय कर्म तो अघातिया कर्म है। वह तो आत्मगुण घातने में निमित्त भी नहीं है। उसकी उपस्थिति तो अनंत अतीन्द्रिय सुख प्राप्त कर लेने पर भी अरहंत भगवान के भी बनी रहती है। **इसलिए नाश तो सबसे पहले मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषायों का ही होता है।**

जिस कर्म के उदय के निमित्त से नरकादि गतियों में जाना और एक सुनिश्चित काल तक रहना होता है; उस कर्म को **आयुकर्म** कहते हैं।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से नरक में जाना और आयुकर्म की स्थिति अनुसार रहना होता है; वह **नरकायु** नामक आयुकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से तिर्यंचगति में जाना होता है और वहाँ आयुकर्म की स्थिति के अनुसार रहना होता है; वह **तिर्यंचायु** नामक आयुकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से मनुष्यगति में जाना होता है और आयुकर्म की स्थिति अनुसार रहना होता है; वह **मनुष्यायु** नामक आयु कर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से देवगति में जाना होता है और आयुकर्म की स्थिति के अनुसार रहना होता है; वह **देवायु** नामक आयुकर्म है।

मनुष्य, देव और तिर्यंच – इन आयु कर्मों को शुभ और **नरकायु को अशुभ माना जाता है;** क्योंकि नरक में जीव मरना चाहता है, अन्य गतियों के जीव किसी भी स्थिति में हों, **मरना नहीं चाहते**।।८-१०।।

नामकर्म के प्रकार

वेदनीय, मोहनीय और आयुकर्म के प्रकारों को प्रस्तुत करने के उपरान्त अब नामकर्म के भेद गिनाते हैं –

गतिजातिशरीरांगोपांगनिर्माणबन्धनसंघातसंस्थानसंहनन स्पर्शरसगन्ध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपो द्योतोच्छ्‌वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रससुभगसुस्वर शुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च।।११।।

गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्‌वास, विहायोगति तथा प्रत्येक शरीर, त्रस, सुभग, सुस्वर, शुभ, सूक्ष्म, पर्याप्ति, स्थिर, आदेय, यश:कीर्ति और इन दसों के प्रतिपक्षी अर्थात् साधारण शरीर, स्थावर, दुर्भग, दुस्वर, अशुभ, बादर, अपर्याप्ति, अस्थिर, अनादेय और अयश:कीर्ति एवं तीर्थंकर – ये बयालीस भेद नामकर्म के हैं।

इन्हीं के अवान्तर भेदों को मिलाने से नामकर्म के तिरानवें भेद हो जाते हैं।

उक्त प्रकृतियों का सामान्य स्वरूप इसप्रकार है –

१ से ४. गति नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव दूसरे भव में जाता है; उस कर्म को **गति** नामक नामकर्म कहते हैं।

गति नामक नामकर्म चार प्रकार का होता है – नरकगति नामकर्म, तिर्यंचगति नामकर्म, मनुष्यगति नामकर्म और देवगति नामकर्म।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव के नारक भाव हों; वह **नरकगति** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव के तिर्यंचों जैसे भाव हों; वह **तिर्यंचगति** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव के मनुष्यों जैसे भाव हों; वह **मनुष्यगति** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव के देवों जैसे भाव हों; वह **देवगति** नामक नामकर्म है।

५ से ९. जाति नामकर्म – नरकादि गतियों में जिस समानता से एकत्व का बोध होता है; उस समानता को **जाति** कहते हैं। जिस कर्म के उदय के निमित्त से ऐसी जाति होती है; उस कर्म को **जाति** नामक नामकर्म कहते हैं।

जाति नामक नामकर्म पाँच प्रकार का होता है – एकेन्द्रियजाति नामकर्म, द्वीन्द्रियजाति नामकर्म, त्रीन्द्रियजाति नामकर्म, चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म और पंचेन्द्रियजाति नामकर्म।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव एकेन्द्रिय कहा जाता है; वह **एकेन्द्रियजाति** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव द्वीन्द्रिय कहा जाता है; वह **द्वीन्द्रियजाति** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव त्रीन्द्रिय कहा जाता है; वह **त्रीन्द्रियजाति** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव चतुरिन्द्रिय कहा जाता है; वह **चतुरिन्द्रियजाति** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव पंचेन्द्रिय कहा जाता है; वह **पंचेन्द्रियजाति** नामक नामकर्म है।

१० से १४. शरीर नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर की रचना होती है; वह कर्म **शरीर** नामक नामकर्म कहलाता है।

शरीर नामक नामकर्म पाँच प्रकार का होता है – औदारिक शरीर नामकर्म, वैक्रियिक शरीर नामकर्म, आहारक शरीर नामकर्म, तैजस शरीर नामकर्म और कार्मण शरीर नामकर्म।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, औदारिक शरीर की रचना हो; वह **औदारिक शरीर** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, वैक्रियिक शरीर की रचना हो; वह **वैक्रियिक शरीर** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, आहारक शरीर की रचना हो; वह **आहारक शरीर** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, तैजस शरीर की रचना हो; वह **तैजस शरीर** नामक नाम कर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, कार्मण शरीर की रचना हो; वह **कार्मण शरीर** नामक नामकर्म है।

१५ से १७. अंगोपांग नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, अंगोपांगों की रचना होती है; वह कर्म **अंगोपांग** नामक नामकर्म कहलाता है।

दो पैर, दो हाथ, नितम्ब, पीठ, वक्षस्थल, (सीना) और सिर (मस्तक) – ये शरीर के आठ **अंग** हैं और ललाट, नाक, कान, आँखें, औंठ, अंगुलियाँ और नाखून आदि को **उपांग** कहते हैं।

अंगोपांग नामक नामकर्म तीन प्रकार का होता है – औदारिक शरीर अंगोपांग नामकर्म, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग नामकर्म और आहारक शरीर अंगोपांग नामकर्म।

१८. निर्माण नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर की भिन्न-भिन्न प्रकार की रचना होती है; वह **निर्माण** नामक नामकर्म कहलाता है।

१९ से २३. बन्धन नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, अंगोपांग बंधन को प्राप्त होते हैं; वह कर्म **बन्धन** नामक नामकर्म है।

इसके अभाव में शरीर लकड़ियों के ढेर जैसा हो जाता।

बन्धन नामक नामकर्म पाँच प्रकार का होता है – औदारिक बन्धन नामकर्म, वैक्रियिक बन्धन नामकर्म, आहारक बन्धन नामकर्म, तैजस बन्धन नामकर्म और कार्मण बन्धन नामकर्म।

२४ से २८. संघात नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर के अंग-उपांग का निश्छिद्र संश्लेष अर्थात् संघात होता है; वह **संघात** नामक नामकर्म है।

संघात नामक नामकर्म पाँच प्रकार का होता है – औदारिक संघात नामकर्म, वैक्रियिक संघात नामकर्म, आहारक संघात नामकर्म, तैजस संघात नामकर्म और कार्मण संघात नामकर्म।

२९ से ३४. संस्थान नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, औदारिक आदि शरीरों की आकृति बनती है; वह **संस्थान** नामक नामकर्म है।

संस्थान नामक नामकर्म छह प्रकार का होता है – समचतुरस्रसंस्थान नामकर्म, न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान नामकर्म, स्वातिसंस्थान नामकर्म, कुब्जकसंस्थान नामकर्म, वामनसंस्थान नामकर्म और हुण्डकसंस्थान नामकर्म।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, ऊपर, नीचे तथा मध्य में शरीर के अवयवों की समान विभाग लिए, रचना होती है; उसे **समचतुरस्र संस्थान** नामक नामकर्म कहते हैं।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, नाभि के ऊपर का भाग भारी और नीचे का पतला होता है, जैसे वट का वृक्ष; उसे **न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान** नामक नामकर्म कहते हैं।

स्वाति यानि बाम्बी (साँप का विल-वामी) की तरह नाभि से नीचे का भाग भारी और ऊपर का दुबला जिस कर्म के उदय से हो, वह **स्वातिसंस्थान** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर कुबड़ा हो; वह **कुब्जक संस्थान** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर बौना हो; वह **वामनसंस्थान** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, अंगोपांग विरूप हों; वह **हुंडक संस्थान** नामक नामकर्म है।

३५ से ४०. संहनन नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, हड्डियों के बन्धन में विशेषता हो; वह **संहनन** नामक नामकर्म है।

संहनन नामक नामकर्म छह प्रकार का है – वज्रवृषभनाराच संहनन नामकर्म, वज्रनाराच संहनन नामकर्म, नाराच संहनन नामकर्म, अर्द्धनाराच संहनन नामकर्म, कीलक संहनन नामकर्म और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन नामकर्म।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, वृषभ यानि वेष्टन, नाराच यानि कीलें और संहनन यानि हड्डियाँ वज्र की तरह अभेद्य हों; वह **वज्रवृषभनाराच संहनन** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, कील और हड्डियाँ वज्र की तरह हों और वेष्टन सामान्य हो; वह **वज्रनाराच संहनन** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, हाड़ों के जोड़ों में कीलें हों; वह **नाराच संहनन** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, हाड़ों की संधियाँ अर्धकीलित हों; वह **अर्धनाराच संहनन** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, हाड़ परस्पर में ही कीलित हों, अलग से कील न हो; वह **कीलित संहनन** नामक नामकर्म है।

जिस कर्म के उदय के निमित्त से, हाड़ केवल नस, स्नायु वगैरह से बंधे हों; वह **असंप्राप्तासृपाटिका संहनन** नामक नामकर्म है।

४१ से ४८. स्पर्श नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर में स्पर्श प्रकट हो; वह **स्पर्श** नामक नामकर्म है।

स्पर्श नामक नामकर्म आठ प्रकार का है – कोमल स्पर्श नामकर्म, कठोर स्पर्श नामकर्म, गुरु स्पर्श नामकर्म, लघु स्पर्श नामकर्म, शीत स्पर्श नामकर्म, उष्ण स्पर्श

नामकर्म, स्निग्ध स्पर्श नामकर्म और रूक्ष स्पर्श नामकर्म।

४९ से ५३. रस नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर में रस प्रकट हो; वह **रस** नामक नामकर्म है।

रस नामक नामकर्म पाँच प्रकार का है – खट्टा रस नामकर्म, मीठा रस नामकर्म, कड़ुआ रस नामकर्म, कषायला रस नामकर्म और चरपरा रस नामकर्म।

५४ से ५५. गंध नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर में गंध प्रकट हो; वह **गंध** नामक नामकर्म है।

गंध नामक नामकर्म दो प्रकार का है – सुगंध नामकर्म और दुर्गंध नामकर्म।

५६ से ६०. वर्ण नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर में वर्ण यानी रंग प्रकट हो; वह **वर्ण** नामक नामकर्म है।

वर्ण नामक नामकर्म पाँच प्रकार का है – काला वर्ण नामकर्म, पीला वर्ण नामकर्म, नीला वर्ण नामकर्म, लाल वर्ण नामकर्म और सफेद वर्ण नामकर्म।

६१ से ६४. आनुपूर्व्य – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, पूर्व शरीर का आकार बना रहे; वह **आनुपूर्व्य** नामक नामकर्म है।

आनुपूर्व्य नामक नामकर्म चार प्रकार का है – नरकगत्यानुपूर्व्य नामकर्म, तिर्यग्गत्यानुपूर्व्य नामकर्म, मनुष्यगत्यानुपूर्व्य नामकर्म और देवगत्यानुपूर्व्य नामकर्म।

इस आनुपूर्व्य नामक नामकर्म को आनुपूर्वी नामकर्म भी कहा जाता है। जैसे – नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और देवगत्यानुपूर्वी।

जिस समय मनुष्य या तिर्यंच मरकर, नरक गति की ओर जाता है तो मार्ग में उसकी आत्मा के प्रदेशों का आकार वैसा ही बना रहता है, जैसा उसके पूर्व शरीर का आकार था, जिसे वह छोड़कर आया है। यह **नरकगत्यानुपूर्व्य** नामक नामकर्म का कार्य है।

जिस समय देव, नारकी, तिर्यंच या मनुष्य मर करके तिर्यंच गति की ओर जाता है तो मार्ग में उसकी आत्मा के प्रदेशों का आकार वैसा ही बना रहता है, जैसा उसके पूर्व शरीर का आकार था, जिसे वह छोड़कर आया है। यह **तिर्यगत्यानुपूर्व्य** नामक नामकर्म का कार्य है।

जिस समय देव, नारकी या तिर्यंच मर करके मनुष्यगति की ओर जाता है तो मार्ग में उसकी आत्मा के प्रदेशों का आकार वैसा ही बना रहता है, जैसा उसके पूर्व शरीर का आकार था, जिसे वह छोड़कर आया है। यह **मनुष्यगत्यानुपूर्व्य** नामक नामकर्म का कार्य है।

जिस समय मनुष्य या तिर्यंच मर करके देव गति की ओर जाता है तो मार्ग में उसकी आत्मा के प्रदेशों का आकार वैसा ही बना रहता है, जैसा उसके पूर्व शरीर का आकार

था, जिसे वह छोड़कर आया है। यह **देवगत्यानुपूर्व्य** नामक नामकर्म का कार्य है।

६५. **अगुरुलघु नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर न तो लोहे के गोले की तरह भारी हो और न आक की रुई की तरह हल्का हो; वह **अगुरुलघु** नामक नामकर्म है।

६६. **उपघात नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, जीव स्वयं ही अपने ही अवयवों से अपना घात करके मर जाये; वह **उपघात** नामक नामकर्म है।

६७. **परघात नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, दूसरे के द्वारा चलाये गये शस्त्र आदि से अपना घात हो; वह **परघात** नामक नामकर्म है।

६८. **आतप नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, आतपकारी शरीर हो; वह **आतप** नामक नामकर्म है। इसका उदय सूर्य के बिम्ब में जो बादर पर्याप्त पृथिवीकायिक जीव होते हैं, उन्हीं के होता है।

६९. **उद्योत नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, उद्योतरूप शरीर हो; वह **उद्योत** नामक नामकर्म है। इसका उदय चन्द्रमा के बिम्ब में रहनेवाले जीवों के तथा जुगनू वगैरह के होता है।

७०. **उच्छवास नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, उच्छ्वास हो; वह **उच्छ्वास** नामक नामकर्म है।

७१. **प्रशस्त विहायोगति नामकर्म** – हाथी, बैल वगैरह की सुन्दर गति के कारणभूत कर्म को **प्रशस्त विहायोगति** नामक नामकर्म कहते हैं।

७२. **अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म** – ऊँट, गधे वगैरह की खराबगति के कारणभूत कर्म को **अप्रशस्त विहायोगति** नामक नामकर्म कहते हैं।

७३. **प्रत्येकशरीर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर एक जीव के ही भोगने योग्य होता है; वह **प्रत्येक शरीर** नामक नामकर्म है।

७४. **साधारणशरीर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, बहुत से जीवों के भोगने योग्य साधारण शरीर होता है; वह **साधारण शरीर** नामक नामकर्म है।

७५. **त्रस नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, द्वीन्द्रिय आदि में जन्म हो; उसे **त्रस** नामक नामकर्म कहते हैं।

७६. **स्थावर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, एकेन्द्रियों में जन्म हो; वह **स्थावर** नामक नामकर्म है।

७७. **सुभग नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, दूसरे जीव अपने से प्रीति करें; वह **सुभग** नामक नामकर्म है।

७८. **दुर्भग नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर सुन्दर सुरूप होने

पर भी दूसरे अपने से प्रीति न करें अथवा घृणा करें; वह **दुर्भग** नामक नामकर्म है।

७९. **सुस्वर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, स्वर मनोज्ञ हो, जो दूसरों को प्रिय लगे; वह **सुस्वर** नामक नामकर्म है।

८०. **दु:स्वर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, अप्रिय स्वर हो; वह **दुस्वर** नामक नामकर्म है।

८१. **शुभ नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर के अवयव सुन्दर हों; वह **शुभ** नामक नामकर्म है।

८२. **अशुभ नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर के अवयव सुन्दर न हों; वह **अशुभ** नामक नामकर्म है।

८३. **सूक्ष्म नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर सूक्ष्म हो जो किसी से न रुके; वह **सूक्ष्म** नामक नामकर्म है।

८४. **बादर (स्थूल) नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर स्थूल हो; वह **बादर** नामक नामकर्म है

८५. **पर्याप्ति नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, आहार आदि पर्याप्तियों की पूर्णता हो; वह **पर्याप्ति** नामक नामकर्म है।

८६. **अपर्याप्ति नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, पर्याप्तियों की पूर्णता नहीं होती; वह **अपर्याप्ति** नामक नामकर्म है।

८७. **स्थिर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर के धातु-उपधातु स्थिर होते हैं, जिससे कठिन श्रम करने पर भी शरीर शिथिल नहीं होता; वह **स्थिर** नामक नामकर्म है।

८८. **अस्थिर नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, धातु- उपधातु स्थिर नहीं होते, जिससे थोड़ा सा श्रम करने से ही या जरा-सी गर्मी-सर्दी लगने से ही शरीर म्लान हो जाता है; वह **अस्थिर** नामक नामकर्म है।

८९. **आदेय नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर प्रभासहित हो; वह **आदेय** नामक नामकर्म है।

९०. **अनादेय नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, शरीर प्रभा रहित हो; वह **अनादेय** नामक नामकर्म है।

९१. **यश:कीर्ति नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, संसार में जीव का यश फैले; वह **यश:कीर्ति** नामक नामकर्म है।

९२. **अयश:कीर्ति नामकर्म** – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, संसार में अपयश फैले; वह **अयशस्कीर्ति** नामक नामकर्म है।

(शेष पृष्ठ 26 पर ...)

छहढाला प्रवचन

सम्यग्ज्ञान की महिमा व तत्त्वाभ्यास की प्रेरणा

कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन मांहि त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते।।
मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतम ज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।।५।।
तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय विभ्रम मोह त्याग, आपौ लख लीजै।।
यह मानुष पर्याय सुकुल, सुनिवौ जिनवानी।
इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधि समानी।।६।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला की चौथी ढाल पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

वीतराग-विज्ञान अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इस जीव को मिथ्यात्वादि दु:खदाई भावों से रक्षा करने के लिए ढाल के समान हैं, उसका वर्णन इस छहढाला में है। उसमें से इस चौथी ढाल में सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए उपदेश चल रहा है। अरे जीव, इन भयंकर भवदु:खों से यदि तू अपने आत्मा की रक्षा करना चाहता है तो इस सम्यग्ज्ञान का सेवन कर। 'आपो लख लीजिए' अर्थात् आत्मा का स्वरूप पहिचान कर सम्यग्ज्ञान प्रकट कर। आत्मा का ज्ञान ही जीव को सच्चे सुख का कारण है, इसके बिना अन्य किसी भी उपाय से किंचित् भी सुख मिलनेवाला नहीं है। अत: हे जीव ! तू जिनदेव के द्वारा कहे गए जीवादि तत्त्वों का बराबर अभ्यास करके अपनी आत्मा को पहिचान ले।

जिनवर अरिहन्तदेव तीर्थंकर परमात्मा का प्रवाह अनादि से जगत में चलता आ रहा है। अनन्त तीर्थंकर हुए, अब भी मनुष्य क्षेत्र में सीमंधरादि बीस तीर्थंकर भगवन्त तथा लाखों अरिहन्त केवली भगवन्त विचर रहे हैं। यहाँ इस भरतक्षेत्र में भी ढाई हजार वर्ष पहले महावीर तीर्थंकर हुए। ऐसे जिन भगवन्तों ने जिन जीवादि तत्त्वों को जाना और उपदेश दिया, उन्हीं तत्त्वों का उपदेश कुन्दकुन्दाचार्य आदि

वीतरागी सन्तों की परम्परा से आज भी चल रहा है। अरे जीव ! ऐसा मनुष्य अवतार, ऐसा जैनकुल और ऐसा वीतरागी जिनोपदेश पाकर तू अब उसको समुद्र में फेंके गये चिन्तामणि के समान व्यर्थ मत गंवा। अब तो आत्मा को पहिचान ले। जिस प्रकार महाभाग्य से चिन्तामणि रत्न हाथ में आया हो, तब उससे अपना कार्य साधने के बदले कोई मूर्ख उसे समुद्र में फेंक दे, उसीप्रकार उत्तम चिन्तामणि जैसा यह मनुष्य अवतार पाकर तू वैसी मूर्खता मत कर, क्योंकि पुन: पुन: ऐसा अवसर मिलना कठिन है। इसलिए इस सुयोग में वीतरागी जिनवाणी सुनकर, भगवान कथित तत्त्वों का सच्चा अभ्यास करके आत्मा को पहिचान ले। आत्मा को पहिचान कर सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान प्रकट करते ही तुझे चैतन्य का अमृत सुख मिलेगा और तेरे भवदु:ख का अन्त आ जावेगा।

अरे, आजकल तो जैनकुल में जन्मे भी बहुत से लोग कुमार्ग में फंस रहे हैं, जिन भगवान के कहे हुए सत् का व्यवहार निर्णय भी नहीं करते, सत् तत्त्व बहुत कठिन पड़ गया है। ऐसा कठिन सत्य तुझे महाभाग्य से मिला है, अत: तू अपने आत्मा का हित साध ले।

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए अपने हाथ में चिन्तामणि रत्न आया है, तो उसको विषय-कषाय के समुद्र में मत फेंक। चिन्तामणि जैसी जिनवाणी के द्वारा आत्मचिन्तवन करके उसे पहिचान ले।

प्रत्येक वस्तु का अपना स्वतंत्र द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव होता है, किसी का किसी में मिलता नहीं है – इसप्रकार भिन्न-भिन्न पदार्थों का स्वाधीन परिपूर्ण स्वरूप जिनवर देव के मार्ग में ही है, उसको तू जान। द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप वस्तु कैसी है, उसे तू पहिचान। रागादि अशुद्धता, सम्यक्त्वादि शुद्धता और शरीरादि में जड़ता, उन सबको एक दूसरे में मिलाए बिना जैसा है वैसा पहिचान और उसमें से आत्मा का वास्तविक स्वरूप जान। अजीव से भिन्न और रागादि से भी रहित ऐसे शुद्ध ज्ञानानन्द-स्वरूप आत्मा को पहिचान। आत्मा को बराबर पहिचान कर सन्देहादि दोषों से रहित सम्यग्ज्ञान प्रगट कर तुझे परम सुख प्राप्त होगा।

जीव-अजीव आदि अनन्त पदार्थों से स्वयं से सिद्ध ऐसा यह विश्व, उसमें प्रत्येक पदार्थ स्वभाव से ही अपने-अपने धर्मरूप है। भिन्न-भिन्न अनन्त जीव हैं, प्रत्येक जीव में अपने-अपने अनन्त गुण और पर्याय हैं, प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रुवतास्वरूप है और संसारी जीव एक गति में से दूसरी गति में पुनर्भव धारण करता है, जब वह वीतरागभाव प्रगट करके मुक्त होता है, तब भवरहित सिद्धपद में

स्थिर हो जाता है और फिर कभी संसार में अवतार नहीं लेता, कभी राग-द्वेष नहीं करता, जगत का कर्ता-हर्ता नहीं बनता। इसप्रकार जिनवरदेव के शासन में कहा गया वस्तुस्वरूप जानना चाहिए, इसी में मनुष्य जन्म की सफलता है।

आत्मा में एक गुण होगा कि अनन्त गुण होंगे। आत्मा स्वतंत्र होगा कि किसी ईश्वर ने बनाया होगा ? परभव होगा कि नहीं ? आत्मा नित्य होगा या इस देह जितना ही होगा ? इस शरीर जितने छोटे क्षेत्र में अनन्त गुण कैसे रहते होंगे ? एक-एक गुण में अनन्त शक्तियाँ किसप्रकार होंगी? अनेकान्त किसप्रकार होगा ? आत्मपर्याय वाला होगा या पर्याय रहित होगा ? शुद्धोपयोग ही मोक्ष का कारण होगा या शुभ राग भी मोक्ष का कारण होगा ? भगवान जिनेन्द्रदेव द्वारा कथित द्रव्य-गुण-पर्याय स्वरूप यथार्थ तत्त्व को जाने तो ज्ञान में इसप्रकार का कोई संदेह, विपरीतता या अध्यवसाय नहीं रहेगा अर्थात् सम्यग्ज्ञान प्रकट होगा। सम्यग्ज्ञान होने पर धर्मी जीव को आत्मा के स्वरूप में कोई संदेह नहीं रहता, क्योंकि आत्मा स्वसंवेदन से स्वयं साक्षात् अनुभूत वस्तु है।

अहा ! जगत के बीच में निरालम्बी लोक, उसके असंख्य प्रदेश में अनन्तानन्त आत्मायें, उनमें प्रत्येक आत्मा भिन्न, स्वतंत्र, स्वाधीन और अपने अनन्त गुण-पर्यायों सहित है – ऐसा अलौकिक वस्तुस्वरूप भगवान सर्वज्ञ के मार्ग के अतिरिक्त अन्य कहीं नहीं है। आत्मा कभी शरीरादि रूप अथवा कर्म रूप नहीं हुआ, जड़ सदा जड़ में, चेतन सदा चेतन में, दोनों के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावरूप चतुष्टमय त्रिकाल द्रव्य हैं। इसप्रकार स्व-पर वस्तु की भिन्नता के निर्णय बिना ज्ञान की विपरीतता नहीं मिटती अर्थात् सम्यग्ज्ञान नहीं होता और जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। आत्मा में संशय होगा तो सम्यग्ज्ञान नहीं होगा और आत्मा के स्वरूप का यथार्थ निर्णय होगा तो सम्यग्ज्ञान अवश्य होगा। सम्यग्ज्ञान नहीं करेगा तो मोक्ष कभी नहीं होगा और सम्यग्ज्ञान करेगा तो मोक्ष होगा ही होगा, इसलिए 'आपा लख लीजे' – ऐसा उपदेश दिया है। **(क्रमश:)**

(पृष्ठ 23 का शेष ...)

९३. तीर्थंकर नामकर्म – जिस कर्म के उदय के निमित्त से, अपूर्व प्रभावशाली अर्हन्त पद के साथ धर्मतीर्थ का प्रवर्तन होता है; वह **तीर्थंकर** नामक नामकर्म है।

इसप्रकार नामकर्म की अभेद विवक्षा से ब्यालीस और भेद विवक्षा से तिरानवें उत्तर प्रकृतियाँ हैं।।११।।

नियमसार प्रवचन –

प्रतिष्ठापना समिति का स्वरूप

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की 65वीं गाथा पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है –

पासुगभूमिपदेसे गूढे रहिए परोपरोहेण।
उच्चारादिच्चागो पइट्ठासमिदी हवे तस्स ।।६५ ।।

(हरिगीत)

प्रतिष्ठापन समिति में उस भूमि पर मल मूत्र का।
क्षेपण करें जो गूढ प्रासुक और हो अवरोध बिन ।।६५।।

परोपरोध से रहित, गूढ, प्रासुक भूमिप्रदेश में इसप्रकार मल-मूत्र का त्याग करना कि उससे किसी जीव का घात न हो, प्रतिष्ठापना समिति है।

(गतांक से आगे....)

समितिरिह यतीनां मुक्तिसाम्राज्यमूलं
जिनमतकुशलानां स्वात्मचिंतापराणाम्।
मधुसुखनिशितास्त्रव्रातसंभिन्नचेत:–
सहितमुनिगणानां नैव सा गोचरा स्यात् ।।८८ ।।

(हरिगीत)

आत्मचिंतन में परायण और जिनमत में कुशल।
उन यतिवरों को यह समिति है मूल शिव साम्राज्य की।।
कामबाणों से विंधे हैं हृदय जिनके अरे उन।
मुनिवरों के यह समिति तो हमें दिखती ही नहीं।। ८८।।

जिनमत में कुशल और स्वात्मचिंतन में परायण ऐसे यतियों को यह समिति मुक्तिसाम्राज्य का मूल है। कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्रसमूह से भिदे हुए हृदयवाले मुनिगणों को वह (समिति) गोचर होती ही नहीं।

कैसे मुनि को यह पंचसमिति होती है? जो मुनि जिनमत में कुशल हैं अर्थात् वीतराग

भगवान कथित सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा देव-गुरु-शास्त्र एवं उपादान-निमित्त आदि में जो कुशल हैं, तथा वीतराग के शास्त्र किसे कहें और किसे नहीं – इन सब में निपुण हैं, तथा जो स्वात्मचिंतन में परायण हैं, स्वानुभव में विशेष लीन हैं; ऐसे मुनि को यह समिति होती है। उन मुनिराज की यह समिति मुक्ति-साम्राज्य का मूल है।

साधु नाम रखा कर जिसका हृदय स्त्री की आँख के कटाक्ष से भिद गया है ऐसे मिथ्यादृष्टि नामधारी साधु के यह समिति नहीं होती। कामदेव के तीक्ष्ण अस्त्रसमूह से भिदे हुए हृदय वाले मुनियों को यह समिति गोचर ही नहीं होती। वीतरागी आत्मध्यान में जो मुनिराज मस्त हैं - लीन हैं, उन्हीं को यह समिति होती है।

जिन्हें सुन्दर स्वादिष्ट भोजन की गृद्धि है, स्त्री के प्रेम में गृद्धि है, और 'हम स्त्रियों को धर्म का उपदेश देते हैं' – इसप्रकार उपदेश के बहाने एकान्त में विषय की वासना का पोषण करते हैं, जिनके हृदय में विषय-वासना अंकुरित है, काम के वेग से जिनका हृदय-स्थल क्षत-विक्षत हो गया है और जो स्त्रियों से परिचय करके कुकर्म साधन करते हैं – उन मुनि को यह समिति गम्य नहीं है। समिति किसे कहते हैं इसका भान उन्हें नहीं होता। यह नग्न मुनि की बात है, दूसरे तो मुनि ही नहीं। नग्न होने पर भी विषय का प्रेम जिनको वर्त्तता है उनको इस वीतरागी समिति की – अन्तरपरमशान्तदशा की खबर नहीं पड़ती।

पद्मप्रभमलधारिदेव आत्ममस्त निर्ग्रन्थ महाब्रह्मचारी मुनि थे। जिसका हृदय विषय-वासना से मलिन है उस मुनि को इस समिति का भान नहीं होता, इत्यादि कथन द्वारा अपने ब्रह्मचर्य का अतिशय वीर्य सूचित करते हैं। उन्होंने बेधड़क होकर, संकोच रहित होकर दीक्षा, मुक्ति आदि आत्मपरिणति को स्त्री की उपमा दी है, जिससे उनकी अध्यात्ममस्तदशा सूचित होती है।

महामुनि जंगल में रहते हैं, उनके वीतरागी दशा-अन्तरस्वरूपलीनता विशेष प्रकट हुई होती है, ऐसे मुनि की यह सच्ची समिति मुक्तिराज्य का मूल है। परिपूर्ण ज्ञानानन्द दशा की – मुक्तिदशा की कारणभूत यह समिति विषयवासनारक्त अज्ञानी को नहीं होती।

दूसरा छन्द इसप्रकार है –

समितिसमितिं बुद्ध्वा मुक्त्यंगनाभिमतामिमां
भवभवभयध्वांतप्रध्वंसपूर्णशशिप्रभाम्।

मुनिप तव सद्दीक्षाकान्तासखीमधुना मुदा
जिनमततपःसिद्धं यायाः फलं किमपि ध्रुवम्।।८९।।

(रोला)

दीक्षाकान्तासखी परमप्रिय मुक्तिरमा को।
भवतपनाशक चन्द्रप्रभसम श्रेष्ठ समिति जो।।
उसे जानकर हे मुनि तुम जिनमत प्रतिपादित।
तप से होनेवाले फल को प्राप्त करोगे।।८९।।

हे मुनि! समितियों में इस समिति को जो मुक्तिरूपी स्त्री को प्यारी है, जो भवभव के भयरूपी अंधकार को नष्ट करने के लिये पूर्ण चन्द्र की प्रभा समान है तथा तेरी सत्-दीक्षारूपी कान्ता की (सच्ची दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की) सखी है उसे – अब प्रमोद से जानकर, जिनमत कथित तप से सिद्ध होनेवाले ऐसे किसी (अनुपम) ध्रुव फल को तू प्राप्त करेगा।

हे मुनि! समितियों में इस समिति को अब प्रमोद से जानकर, जिनमत-कथित तप से सिद्ध होनेवाले ऐसे कोई अनुपम ध्रुवफल को तू प्राप्त करेगा। कैसी है वह समिति? जो मुक्तिरूपी स्त्री-मुक्तिरूपी आत्मा की शुद्ध परमानन्ददशा को प्यारी है। यह पाँचवीं समिति अर्थात् आत्मा के ज्ञान-ध्यानसहित रमणता भव-भव के भयरूपी अंधकार को नाश करने के लिए पूर्णचन्द्र की प्रभा समान है। जैसे चन्द्रोदय होते ही अंधकार का नाश हो जाता है वैसे ही यह समितिरूपी चन्द्र भी राग-द्वेषरूपी अंधकार का नाशक है।

जो नग्नत्वरहित, वस्त्रसहित दीक्षा लेता है वह सच्ची दीक्षा नहीं है। इस सच्चे आत्मा के भानसहित और शुभाशुभ विकल्परहित स्वभाव में टिकना ही वास्तविक कर्त्तव्य है, और वही सच्ची दीक्षा है। दीक्षारूपी प्रिय स्त्री की – दीक्षारूपी शुद्धपरिणति की – यह समिति सखी है। मुनिपने का ऐसा ही स्वरूप है। आत्मा के सच्चे भान बिना केवल चरणानुयोग के अनुसार मुनिपना माने – अन्तर शुद्धदशारूप परिणमे बिना शुभराग और बाह्यक्रिया से मुनिपना माने – वह वास्तविक मुनिपना नहीं है। सच्चा मुनिपना तो अन्तर भानसहित और वीतरागी रमणतापूर्वक ही है।

स्वभाव में रहना वह प्रमोद है। इस समिति को प्रमोद से जानकर हे मुनि! तू आत्मा के ज्ञान-ध्यान से अनुपम ध्रुवफल को प्राप्त करेगा – परिपूर्ण मुक्तदशा को

पावेगा। वीतरागी मार्ग के अतिरिक्त अन्य किसी मार्ग में मुक्ति है ही नहीं। छठे-सातवें गुणस्थान में झूलते मुनिपना को यहाँ तप कहा है। वीतरागमतकथित मुनिपना छठे-सातवें गुणस्थान में झूलते हुए वन में विचरते हुए को ही होता है – इसके अलावा अन्य रीति से मुनिपना मानने वाला वीतराग का, तीर्थंकर भगवान का, अनन्त ज्ञानियों का विरोधी है। वीतरागी भगवान के द्वारा कहे हुए मुनिमार्ग को हम तप कहते हैं। ऐसे मुनिपने वाला जीव अनुपम सुख पाता है – अन्य नहीं, क्योंकि अन्य के सच्चा मुनिपना नहीं होता।

तीसरा छन्द इसप्रकार है –

(द्रुतविलंबित)

समितिसंहतित: फलमुत्तमं सपदि याति मुनि: परमार्थत:।
न च मनोवचसामपि गोचरं किमपि केवलसौख्यसुधामयम्।।९०।।

(दोहा)

समिति सहित मुनिवरों को उत्तम फल अविलम्ब।
केवल सौख्य सुधामयी अकथित और अचिन्त्य।।९०।।

समिति की संगति द्वारा वास्तव में मुनि मन-वाणी को भी अगोचर (मन से अचिंत्य और वाणी से अकथ्य) ऐसा कोई केवलसुखामृतमय उत्तम फल शीघ्र प्राप्त करता है।

समिति की संगति द्वारा वास्तव में मुनि मन से अचिन्त्य और वाणी से अकथ्य ऐसा कोई केवल सुखामृतमय उत्तम फल शीघ्र पाते हैं। अन्तर आत्मस्वभाव के सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र सहित इस समिति के संग द्वारा मुनि मन-वाणी के भी अगोचर ऐसा केवल सुखामृतमय उत्तम फल शीघ्र पाते हैं और अल्पकाल में मुक्ति पाते हैं। ऐसे भावलिंगी दिगम्बर मुनि कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य, पद्मप्रभमलधारिदेव इत्यादि अनेक धर्म के स्तंभ समान महासमर्थ निर्ग्रन्थ मुनिवर हो गए हैं, वे अवश्य ही इस समिति के संग द्वारा उत्तम फल को – मोक्षदशा को पायेंगे। •

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : समयसार की प्रथम गाथा में कहा कि अनंत सिद्धों को तेरी पर्याय में स्थापन करता हूँ। यहाँ प्रश्न है कि अनंत सिद्ध तो हमारे लिये परद्रव्य हैं, हमारी पर्याय में अतद्भावरूप है – ऐसी स्थिति में उनका स्थापन कैसे हो सकता है ?

उत्तर : अनंत सिद्ध हमारी पर्याय में भले ही अतद्भावरूप हो; परन्तु उन अनंत सिद्धों की प्रतीति पर्याय में आ जाती है, इसलिये अनंत सिद्धों का स्थापन करना कहा है। जिसतरह अद्यवसान का त्याग कराने के लिये बाह्य वस्तु का त्याग कराया जाता है; उसीतरह अपने सिद्धस्वभाव का पर्याय में स्थापन कराने के लिय अनन्त सिद्धों का स्थापन कराने में आया है। जैसे बाह्यवस्तु अध्यवसान का निमित्त है, वैसे ही अपने सिद्धस्वरूप का लक्ष कराने में अनन्त सिद्ध निमित्त हैं।

प्रश्न : समयसार की ग्यारहवीं गाथा को आप जैनदर्शन का प्राण कहते हो, उसमें तो व्यवहारनय को अभूतार्थ कहा है - झूठा कहा है। कृपया इस गाथा का स्पष्टीकरण कीजिए?

उत्तर : ग्यारहवीं गाथा वास्तव में जैनदर्शन के प्राणरूप ही है। उसमें निश्चय व्यवहारनय की बात की है, उसे यथातथ्य जानना चाहिये। राग, पर्याय, गुणभेद - ये सब व्यवहारनय के विषय हैं और त्रिकाली वस्तु में नहीं है; इसलिये ही व्यवहार नय को झूठा कहकर अभूतार्थ कहा है; अर्थात् पर्याय है ही नहीं – इसप्रकार इसका सीधा-साधा अर्थ होता है, परन्तु उसका आशय ऐसा नहीं है। पर्याय है अवश्य, उसके अस्तित्व का अस्वीकार नहीं किया जा सकता; परन्तु जो त्रिकाली वस्तु है, वह पर्याय नहीं है। इसलिये पर्याय की उपेक्षा करके उसे गौण करके त्रिकाली ध्रुव ज्ञायक की दृष्टि कराई जाती है; क्योंकि त्रिकाली द्रव्य को मुख्य करके द्रव्य का अनुभव कराने का प्रयोजन है। ज्ञान वह आत्मा ऐसा भेद भी दृष्टि के विषय में नहीं आता। अभेददृष्टा की दृष्टि में भेद दिखाई ही नहीं देता, सत्यार्थदृष्टा को असत्यार्थ दिखाई ही नहीं पड़ता, नित्य देखनेवाले को अनित्य दृष्टिगोचर नहीं होता, भूतार्थ पर दृष्टि रखनेवाले को अभूतार्थ के दर्शन नहीं होते तथा एकाकार देखनेवाले को अनेकाकार दृष्टि में नहीं आता; इसीकारण से भेदरूप व्यवहार को अभूतार्थ कहा है और निश्चय नय की विषयभूत त्रिकालीध्रुव वस्तु ही भूतार्थ होने से उसका आश्रय कराया है।

अहो! यह आत्मतत्त्व तो गहन है, उसका निर्णय और अनुभव करने के लिये आचार्यों के अन्तरंग अभिप्राय को पकड़ना होगा।

समाचार दर्शन -

सल्लेखना के समर्थन में विशाल मौन जुलूस

राजस्थान हाइकोर्ट द्वारा जैन धर्म के सल्लेखना को आत्महत्या बताये जाने के विरोध में दिनांक 24 अगस्त को धर्म बचाओ आन्दोलन के अन्तर्गत पूरे देश में सैंकड़ों स्थानों पर विशाल मौन जुलूस निकाला गया।

जयपुर में भी लगभग 3 कि.मी. लम्बे जुलूस में टोडरमल महाविद्यालय के सभी विद्यार्थियों सहित लाखों साधर्मियों ने भाग लिया। श्री राजेन्द्र के. गोधा एवं श्री सुभाषचन्द जैन के मुख्य संयोजकत्व में जयपुर में जुलूस प्रातः 10.00 रामलीला मैदान से प्रारम्भ होकर जौहरी बाजार, त्रिपोलिया बाजार, चौड़ा रास्ता, एम.आई.रोड़ होते हुये महावीर स्कूल में जाकर विशाल धर्मसभा में परिवर्तित हो गया। जुलूस में पुरुष सफेद वस्त्र एवं महिला वर्ग केसरिया साड़ी में बायें हाथ पर काली पट्टी विरोध स्वरूप बांधकर सम्मिलित हुये। इस दिन पूरे देश में जैन समाज के प्रतिष्ठान, शिक्षण संस्थाएं बन्द रहीं एवं कर्मचारी भी अवकाश पर रहे।

ज्ञातव्य है कि अमेरिका, लंदन, आस्ट्रेलिया आदि देशों में भी जैन समाज ने मौन जुलूस निकालकर विरोध प्रदर्शन किया।

डॉ. भारिल्ल का नवीन प्रकाशन

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा रचित नवीन कृति '**आगम के आलोक में समाधिमरण या सल्लेखना**' का प्रथम संस्करण 25 हजार की संख्या में 15 अगस्त को प्रकाशित किया गया था।

इस प्रथम संस्करण की सभी 25 हजार प्रतियाँ मात्र 20 दिन की अल्पावधि में ही समाप्त हो गई है। 5 हजार प्रतियों का द्वितीय संस्करण शीघ्र प्रकाशित किया जा रहा है।

5 रुपये मूल्य की इस पुस्तक को जो भाई/मण्डल/संस्था अपनी ओर से वितरित कराना चाहते हैं; 1000 या अधिक पुस्तकों का ऑर्डर भेजने पर उनका नाम पुस्तक के कवर पृष्ठ 2 पर अंकित कराकर भेजा जायेगा। **अपना ऑर्डर शीघ्र भेजें या ईमेल करें –** साहित्य विक्रय विभाग, टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर 302015 (राज.)

ptstjaipur@yahoo.com

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

2 अक्टूबर	जयपुर (टोडरमलजी मंदिर)	ताम्रपत्र-मोक्षमार्गप्रकाशक विमोचन
18 से 27 अक्टूबर	जयपुर (टोडरमल स्मारक भवन)	शिक्षण शिविर
31 अक्टू. व 1 नव.	इन्दौर (ढाईद्वीप)	वेदी शिलान्यास
8 से 12 नवम्बर	देवलाली-नासिक (महा.)	भ.महावीर निर्वाणोत्सव
18 से 25 नवम्बर	जयपुर (टोडरमल स्मारक भवन)	सिद्धचक्र मण्डल विधान
25 से 30 दिसम्बर	गढाकोटा (म.प्र.)	पंचकल्याणक प्रतिष्ठा

दशलक्षण पर्व के अवसर पर प्रभावना में वितरण हेतु –

ऑर्डर शीघ्र भेजें / छूट का लाभ लें

पण्डित सूरचंदजी कृत समाधिमरण पाठ को अ.भा. जैन युवा फैडरेशन द्वारा संगीतमय रिकॉर्ड कराया गया है। इसकी सी.डी. (हिन्दी अर्थ की पुस्तिका सहित) 20/- रुपये में बिक्री हेतु उपलब्ध है। दशलक्षण पर्व के अवसर पर प्रभावना हेतु जो भाई इनका वितरण करना चाहते हैं, वे एक साथ 50 या अधिक सी.डी. का ऑर्डर भेजने पर 5/- रुपये की छूट के साथ मात्र 15/- रुपये में सी.डी. प्राप्त कर सकते हैं।

डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित नवीनतम कृति 'आगम के आलोक में समाधिमरण या सल्लेखना' भी मात्र 5/- रुपये में साहित्य बिक्री विभाग में उपलब्ध है।

साहित्य निःशुल्क मंगा लें

जो भी साधर्मीजन अपने स्वाध्याय हेतु ग्रंथ चाहते हैं उन्हें सोनगढ, जयपुर, मंगलायतन, मुम्बई, दिल्ली, जबलपुर इत्यादि मुमुक्षु संस्थाओं द्वारा प्रकाशित साहित्य निःशुल्क दिया जा रहा है। अपनी आवश्यकता के अनुसार निःशुल्क साहित्य नीचे लिखे पते पर संपर्क कर मंगवा सकते हैं – अमित जैन C/o DTDC कोरियर, 3312, लाल गली, दिल्ली गेट, दरियागंज, दिल्ली - 110002 मो.-09811393356

श्री टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के खाते में

बैंक में पैसे जमा कराने वाले महानुभावों से

अत्यन्त आवश्यक नम्र निवेदन

हमारे पास अनेकों इसप्रकार की राशियाँ जमा हैं, जिनके स्रोत ज्ञात न होने, मालूम न होने के कारण उनका यथायोग्य जमा-खर्च सम्भव नहीं हो पा रहा है।

आपने यदि कोई राशि हमारे खाते में जमा करवाई हो व जिसकी रसीद आपको न मिली हो तो कृपया तुरन्त हमें सूचित करें ताकि उसे उपयुक्त खाते में जमा करके उसकी रसीद आपको भिजवाई जा सके। राशि जमा कराने हेतु संस्था के खाते का विवरण निम्नानुसार है –

Name of Account	: **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**
Bank A/c No.	: 0247000100024619
Accounts Type	: Saving A/c
Name & Address of Bank	: PNB Bank, Bapu Nagar Branch
Bank Micr Code	: 302024004
Bank IFSC Code	: PUNB0024700
PAN NO.	: AAATP2595H

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4, बापूनगर, जयपुर-302015 (राज.) फोन : (0141)2705581, 2707458 **E-mail - ptstjaipur@yahoo.com**

ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन जयपुर में पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा आयोजित

17वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर

(रविवार, 18 अक्टूबर से मंगलवार, 27 अक्टूबर 2015 तक)

सद्धर्मप्रेमी बन्धुवर,

आपको सूचित करते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि राजस्थान की प्रसिद्ध गुलाबी नगरी जयपुर में ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा 17वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर इस वर्ष रविवार दिनांक 18 अक्टूबर से मंगलवार दिनांक 27 अक्टूबर 2015 तक अनेक विशिष्ट कार्यक्रमों सहित संपन्न होने जा रहा है।

इस शिविर में तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना इत्यादि अनेक विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त होगा।

विशिष्ट कार्यक्रम :-

(1) अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन राजस्थान प्रदेश का अधिवेशन

(2) प्रशिक्षण शिविर के अध्यापकों का प्रशिक्षण (रिफ्रेशर कोर्स)

(3) अखिल भारतवर्षीय विद्वत्परिषद् एवं टोडरमल स्नातक परिषद् द्वारा 'आगम के आलोक में सल्लेखना' विषय पर त्रिदिवसीय गोष्ठी

(4) श्री टोडरमल स्नातक परिषद् का सम्मेलन

आप सभी को शिविर में पधारने हेतु हार्दिक आमंत्रण है।

नोट :- कृपया आवासादि की समुचित व्यवस्था हेतु अपने आगमन की पूर्व सूचना अवश्य देवें।

शोक समाचार

(1) इंटाली-उदयपुर (राज.) निवासी श्री गिरधारीलालजी जैन मुम्बई का दिनांक 17 अगस्त को शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप अत्यंत स्वाध्यायप्रेमी एवं तत्त्वप्रचार हेतु समर्पित व्यक्ति थे। आपकी स्मृति में संस्था को 5 हजार रुपये प्राप्त हुये।

(2) शिवपुरी (म.प्र.) निवासी श्री सर्वज्ञ सरल-अभयकुमार-कैलाशचंद-बचनलाल-सुरेशचंद-अरुणकुमारजी की माताजी **श्रीमती नारायणीबाई जैन** धर्मपत्नी स्व.श्री मानमलजी जैन का दिनांक 18 सितम्बर को 95 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया।

आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक व वीतराग-विज्ञान हेतु 5100-5100/- रुपये एवं टोडरमल स्मारक ट्रस्ट हेतु 11000/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मा चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत अतीन्द्रिय आनन्द को प्राप्त हो - यही मंगल भावना है।

R.N.I. No. 38278/83 *Postal Regd. No. JaipurCity/421/2015-17*

ढाईद्वीप जिनायतन, इन्दौर
बढ़ते चरण...

श्रीमती शोभाबेन रसिकलाल धारीवालजी पूना के सहयोग से निर्मित

सम्पादक :
डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., पीएच. डी.
सह-सम्पादक :
डॉ. संजीवकुमार गोधा
एम.ए.द्वय , नेट, एम. फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक :
ब्र. यशपाल जैन, एम. ए.
द्वारा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के लिये
जयपुर प्रिंटर्स प्रा.लि., जयपुर से
मुद्रित एवं प्रकाशित।

If undelivered please return to -- **Pandit Todarmal Smarak Trust , A-4, Bapu Nagar, Jaipur - 302015**